शहीद भगत सिंह

मलविंदर जीत सिंह वढ़ैच

भगत सिंह का जन्म 28 सितम्बर 1907 (शनिवार) को सुबह पौने नौ बजे, जिला लायलपुर (अब फैसलाबाद), पाकिस्तान के गांव बंगा (चक्क नं. 105) में हुआ, जहां पर उनके दादा सरदार अर्जन सिंह ने 1899 के आस-पास, जिला जालन्धर/नवांशहर में अपने पैतृक गांव खटकड़कला छोड़कर वहां चले जाने का फैसला कर लिया था। वास्तव में उस समय बहुत सारे किसान पूर्वी पंजाब से पश्चिमी पंजाब की नई आबाद की जा रही नहरी बस्तियों में जा बस, क्योंकि उनकी नजरें वहां की उपजाऊ और अछूती जमीन पर ललचाई हुई थीं, जो कि अब नई बनी नहरों द्वारा सींची जाने लगी थी।

सरदार अर्जन सिंह एक आर्य समाजी थे तथा कांग्रेस का एक क्रियाशील सदस्य होने के अलावा वह रूढ़ीवादी विचारों, रीति-रिवाजों और विशेष रूप से जाति प्रथा के कट्टर विरोधी थे। इसलिए यह कोई हैरानी की बात नहीं थी कि उनके तीनों पुत्र – सरदार किशन सिंह (भगत सिंह के पिता), सरदार अजीत सिंह व सरदार स्वर्ण सिंह (भगत सिंह के चाचे) स्वतंत्रता संघर्ष को समर्पित हो गए। शहीद क जन्म का वर्ष 1907, पंजाब में राजनीतिक उथल-पुथल का वर्ष था, जैसे राष्ट्रीय स्तर पर 1905 में 'बंगाल विभाजन' इस उभार का कारण बना और पंजाब के लिए इसका आधार 'पंजाब कोलोनाइजेशन एक्ट' बना। इस एक्ट द्वारा सरकार नहरी कालोनियों में बसे हुए किसानों से उनकी उस जमीन के स्वामितत्व का अधिकार छीन लेना चाहती थी, जो उन्होंने कड़ी मेहनत से खेती योग्य बनाई थी। डरे-सहमे किसान अपनी शाख व जान से भी प्यारे खेतों की रक्षा के लिए 'पगड़ी संभाल जट्टा' का नारा बुलन्द करते हुए संघर्ष के रणक्षेत्र में कूद पड़े तथा जैसे कि उम्मीद थी, सरदार अर्जन सिंह का परिवार इस आन्दोलन के मुख्य पृष्ठों पर आ गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सरदार किशन सिंह को नेपाल का देश निकाला, सरदार स्वर्ण सिंह को कैद और सरदार अजीत सिंह को बर्मा में नजरबंद कर दिया गया। शहीद क जन्म उन तीनों के वापिस आने की खबर के साथ ही हुआ और उसका प्यार का नाम 'भागांवाला' (भाग्यशाली) रखा गया, जो बाद में भगत सिंह हो गया; वह नाम, जिसने एक लोकगाथा बनना था। भाग्य देवता इस शिशु पर दयावान तो हुए ही जिसने उसको अमर बना दिया।

भगत सिंह, जब बच्चा ही था तब वह घर में अपनी दो बेसहारा चाचियों को देखता। सरदार अजीत सिंह जिन्हें भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया गया था और किसी को उसके जीवित होने का विश्वास भी नहीं था, की पत्नी माता हरनाम कौर तथा सरदार स्वर्ण सिंह जो जेल में कठोर यातनाऐं सहते तपदिक के शिकार हो गए थे और सरकार ने इस डर से कि कहीं जेल मं ही इनकी मृत्यु न हो जाए उनके सारे केस वापिस ले लिए और उन्हें रिहा कर दिया, जो कुछ सप्ताह बाद 20 जुलाई 1910 को प्राण त्याग गए जब वे केवल 23 वर्ष के थे, की पत्नी थी माता हुक्म कौर। वे दोनों ही बच्चे (भगत) पर जान छिड़कती थीं। अकसर ही भगत सिंह जब स्कूल से पढ़कर आता तो बड़ी मासूमियत से अपनी चाची हरनाम कौर से पूछता कि क्या चाचा जी की कोई चिट्ठी आई है? वह यह नहीं जानता था कि इस सवाल से चाची के मन में भावनाओं का ज्वालामुखी खौलने लगेगा। किन्तु उसको उनकी आत्मा की गहरी उदासी की थाह पाने में ज्यादा समय न लगा और उसने बिल्कुल सही पहचान लिया था कि इस बीमारी की जड़ विदेशियों का अत्याचारी शासन है। जवाब देने में असमर्थ, चाची के चेहरे के उदास हाव-भाव देखकर वह भड़क उठता और पूरे जोश में आकर कहता कि जब वह बड़ा हो

जाएगा तो हिन्दुस्तान को आजाद करवाने के लिए बंदूक लेकर अंग्रेजों से लड़ेगा और अपने चाचा को वापिस लाएगा। पीड़ितों से हमदर्दी और अत्याचारियों के खिलाफ कहर, उसके दिल की गहराईयों में बैठ गया, विशेष तौर पर इस कारण भी कि उनके घर 1914-15 के क्रान्तिकारियों समेत हर तरह के विद्रोहियों का आना-जाना बना रहता था। जिनमें से नौजवान नायक करतार सिंह सराभा उसका आर्दश बन गया।

13 अप्रैल 1919 को बैसाखी के शुभ दिवस, अमृतसर के जलियांवाला बाग में हत्याकांड ने देश की अंतर-आत्मा को झंझोर कर रख दिया। बारह वर्षीय भगत सिंह 14 अप्रल को उस खूनी स्थल पर जाने से न रुक सका और वहां से उसने खून से रंगी मिट्टी उठाकर सारी उम्र के लिए एक निशानी के रूप में संभालकर रख ली। उस दिन वह स्कूल जाने की बजाय सीधा अमृतसर चला गया था। शाम को वहां से वापिस आते हुए काफी देर हो गई और बुरी तरह घबराए और बेचैन पारिवारिक सदस्यों की तो जैसे सांस ही रुको रही। इस खून की होली से हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम में एक क्रांतिकारी परिवर्तन तो आया ही, साथ ही शहीद के जीवन में भी यह एक तीव्र मोड़ साबित हुआ। फिर इसके दो वर्ष बाद खून की एक और होली, पहले सिख गुरु, गुरु नानक देव जी के जन्म स्थान, गुरुद्वारा श्री ननकाना साहिब में खेली गई, जब 20 फरवरी 1921 को लगभग 150 निहत्थे सिख श्रद्धालु कत्ल कर दिए गए और उनकी लाशों पर मिट्टी का तेल छिड़ककर जला दिया गया। भले ही प्रत्यक्ष रूप से यह एक धार्मिक मामला था, किन्तु इसका एक राजनीतिक पहलू भी था। वास्तव में यह नरसंहार बदमाश और दुराचारी महंतों द्वारा किया गया था, जो गुरुद्वारों का प्रबंध चलाते थे और धार्मिक स्थानों की अथाह जमीन-जायदाद का अंधाधुन्ध दुरुपयोग करते थे। सिख लोग उन महंतों को अधर्मी मानते थे। उन्हें गुरुद्वारों से बाहर निकालने के लिए एक गुरुद्वारा सुधार लहर चलाई गई, किन्तु सरकार महंतों की पीठ ठोक रही थी। भगत सिंह जब 5 मार्च 1921 को वहां आयोजित एक बहुत बड़ी कांफ्रेंस में शामिल होने के लिए ननकाना साहिब गया तो वह एक बार फिर अंदर तक हिल गया। वहां से वह उन बेरहम हत्याओं की स्मृति में बनाया गया एक कैलेंडर लेकर वापिस आ गया। सरकार के विरोध और अवमानना के चिन्ह के रूप में उसने भी बाकी सिखों की तरह काली पगड़ी पहननी शुरु कर दी। साथ ही उसने गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ करने के लिए पंजाबी/गुरुमुखी सीखनी शरू कर दी, जिसे प्राचीन समय से ही धार्मिक और सच्चे सिख गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ करने के लिए बड़ी संख्या में सीखते रहे थे। दिलचस्प बात यह है कि भगत सिंह पहले ही उर्दू, हिन्दी और संस्कृत के महारथी थे और अंग्रेजी के लिए बाद में उसे काफी मेहनत करनी पड़ी थी। फिर जब उसने 'किरती' पत्रिका के लिए लेख-श्रृंखला, जिनमें ज्यादातर शहीदों की जीवनियां होती थी, लिखनी शुरु की तो पंजाबी का ज्ञान होने के कारण उसके लिए यह बड़ा आसान रहा। कुछ देर बाद उसने, गांधी जी द्वारा किए गए 'असहयोग आन्दोलन' के आह्वान पर लाहौर का डी.ए.वी. स्कूल छोड़ दिया। असहयोग आन्दोलन के दौरान गांधी जी ने विद्यार्थियों को अपील की कि वे सरकार से सहायता प्राप्त या मान्यता प्राप्त संस्थाओं को छोड़कर नैशनल स्कूलों/कॉलेजों में दाखिल हो जाएं। भगत सिंह, जो अभी दसवीं कक्षा में ही था, भी नैशनल कॉलेज लाहौर में दाखिला लेने चला गया, जिसके लिए उसे एक परीक्षा पास करनी पड़नो थी, जो उसने पास कर ली।

इस कॉलेज में पढ़ते वह सुखदेव, भगवती चरण वोहरा, यशपाल और कुछ और मित्रों के संपर्क में आया। ये ही मित्र उसके भविष्य के साथी बने। पाठ्यक्रम, पुस्तकालय की पुस्तकों और अध्यापकों समेत कॉलेज का पूरा माहौल ही इस ढंग से बनाया गया था कि विद्यार्थियों में सामाजिक व राजनीतिक चेतना को बढ़ावा मिले। भगत सिंह भिन्न-भिन्न प्रकार की पुस्तकों का कड़ी मेहनत के बलबूते गंभीर पाठक बन गया और यह

उसके स्वभाव का अभिन्न अंग हो निकला। एफ.ए. की परीक्षा पास करने के तुरन्त बाद ही उसकी कॉलेज की पढ़ाई सितम्बर 1923 के आस-पास अचानक छूट गई, क्योंकि घर वाले उसका विवाह करना चाहते थे। वह घर से भाग गया और उसने करीब छह महीने कानपुर में गुजारे, जहां उसने एक प्रसिद्ध राष्ट्रवादी और 'प्रताप' अखबार के संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी से पत्रकारिता की कला सीखनी आरंभ की। इस दौरान वह प्रसिद्ध 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' में सक्रिय हो गया तथा सरगर्म इंकलाबी लहर में कूद पड़ा और बाद में सुखदेव के सहयोग से, पंजाब में भी 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' की इकाई कायम करने में जुट गया।

1924 के शुरु में घर वापिस आने के तुरन्त बाद ही अप्रैल 1924 में उसे फिर फरार होना पड़ा। वजह यह थी कि जैतो के मोर्चे के संबंध में 500 सत्याग्रहियों का एक बड़ा जत्था जैतो जा रहा था, जब यह समूह लायलपुर जिले के गांव बंगा (चक्क नं. 105) में दोपहर के समय पहुंचा तो भगत सिंह ने अपने साथियों के साथ मिलकर उनके लिए लंगर का प्रबंध तो किया ही साथ ही साथ जथे के समक्ष जोशीली तकरीर की और रात को वहां उसके ठहरने का 'बन्दोबस्त' भी किया था। वास्तव में उसके अपने परिवार का ही दिलबाग सिंह सरकार परस्त होने के नाते ऐसी गतिविधियों का कट्टर विरोधी था और उसने ही सरकार को उकसाकर भगत सिंह के वारंट जारी करवाए थे, जिस कारण भगत सिंह दिसम्बर 1925 तक मफरूर रहा। इस दौरान वह ज्यादातर दिल्ली और उत्तर प्रदेश में रहा।

1926 के शुरु में उसने कामरेड रामचंद्र, भगवती चरण वोहरा, सुखदेव तथा अन्य साथियों के साथ मिलकर 'नौजवान भारत सभा' बना ली। क्रांतिकारियों के लिए यह संस्था एक खुला मंच थी, जो साथ ही साथ समाज सुधार और सांप्रदायिक सद्भावना के विशाल उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बनाई गई थी।

जब वह क्रांतिकारी गतिविधियों में जी-जान से जुटा हुआ था, तब उस 29 मई 1927 को लाहौर पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और 4 जुलाई 1927 तक हिरासत में रखा। उसके पिता सरदार किशन सिंह 60,000 रुपए के मुचलके पर उसको जमानत पर रिहा करवाने में सफल हो गए। भगत सिंह को अपने परिवार के सदस्यों से मिलने से पहले ही उसके पिता ने उसे डंडे से पीटा मगर भगत बस हंसता ही रहा। उन दिनों जिद्दी संतान (बेटों) के साथ ऐसा व्यवहार आम होता था।

8-9 सितम्बर 1928 को दिल्ली में एक नया दल बनाया गया, जिसका नाम पहले दल 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' की बजाय 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' रखा गया, जिसका उद्देश्य क्रांति की सहायता से भारत को समाजवादी गणराज्य बनाना था। हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन ने 17 दिसम्बर 1928 को सहायक पुलिस सुपरिटेंडेंट 'जे.पी. सांडस' को मारकर, पहली बड़ी कार्यवाही की। सांडस के लाठीचार्ज के कारण ही लाला लाजपत राय जख्मी हुए थे, जिस कारण उनकी मृत्यु हो गई थी। उक्त कार्रवाई के तुरन्त बाद एसोसिएशन की तरफ से एक इश्तिहार जारी किया गया, जिसमें उन्होंने हत्या की जिम्मेदारी स्वीकार की और दल की इस धारणा का उल्लेख भी किया कि जहां तक संभव हो सके, 'इंसानी खून बहाने' से बचते हुए, इंकलाब उनका उद्देश्य है।

1929 के आरंभ में आगरा में तीन महीने पार्टी के कार्यकर्त्तायों में आपस में लम्बा विचार-विमर्श हुआ, जिसके फलस्वरूप 8 अप्रैल 1929 को भगत सिंह और बी.के. दत्त ने केन्द्रीय असेंबली में दो बम फैंके। ये बम किसी को नुकसान पहुंचाने के मकसद से नहीं फैंके गए थे। धमाके के तुरन्त बाद इश्तिहार फैंके गए, जिनमें यह ऐलान किया गया कि यह कारनामा सिर्फ 'बहरी सरकार' के कानों तक आवाज पहुंचाने के लिए किया गया

है। फिर उन्होंने पुलिस को आत्म सम्पर्ण कर दिया। उन्होंने मुकदमे के दौरान अदालत में एक सार्थक ब्यान दिया, जिसमें उन्होंने धमाके के बाद लगाए गए नारे 'इंकलाब जिंदाबाद', जो कि पूरे देश में गूंज उठा था, की तर्कपूर्ण व्याख्या भी की थी।

चार-पांच सप्ताह में ही एक-एक करके उसके अन्य साथी गिरफ्तार कर लिए गए। हालांकि भगत सिंह और बी.के. दत्त को पहले ही असंबली केस में उम्र कैद हो चुकी थी, किन्तु उन्हें अपने अन्य साथियों के साथ लाहौर षड्यंत्र केस के मुकदमे का सामना भी करना था।

जेल में रहते हुए मानवीय व्यवहार पर अपना अधिकार सिद्ध करने के लिए, उन्होंने दो महीने से भी लम्बी भूख हड़ताल की। इस संघर्ष के दौरान, उन्हें अपने एक प्रिय साथी और बम बनाने में माहिर जतिन दास की कुर्बानी भी देनी पड़ी; तब कहीं जाकर, वे लोगों की हार्दिक सहानुभूति प्राप्त करने में कामयाब हुए।

उन्होंने न केवल निश्चिन्त होकर मुकदमे का सामना किया, बल्कि हम कह सकते हैं कि उन्होंने इंकलाबी नारे लगाते हुए मुकदमे का आनंद लिया। वे 'मई दिवस', 'लेनिन दिवस', 'काकोरी दिवस' तथा ऐसे और कई 'दिवस' मनाकर मुकदमे का जश्न मनाते रहे। अदालती कार्यवाहियों के दौरान अपने 'बचाव' में उनकी दिलचस्पी बहुत कम थी, बल्कि उनका मकसद तो इस सारे मामले का एक नाटक की तरह उसका नकाब उतारना था और इससे भी ज्यादा उनका उद्देश्य अदालती मंच को प्रचार-संचार का मंच बनाना था। अतंत: उनमें से तीन भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसो की सजा हुई, सात को उम्र कैद, दो को सात व पांच वर्ष की कठोर सजायें हुई तथा तीन बरी हुए।

7 अक्ट्बर 1930 को मुकदमे का निर्णय आने के बाद कुछ लोकहितैषी बहादुर वकीलों द्वारा भारत और इंग्लैंड की प्रीवी कौंसिल में कुछ अपीलें की गई। इनमें से एक भो अपील अपराधियां की तरफ से नहीं की गई थी। ये सारी अपीलें कानूनी नियमों पर आधारित थीं।

भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु ने 20 मार्च 1931 को पंजाब के गर्वनर को एक चिट्ठी लिखी। जिसमें उन्होंने बिनती की थी कि उन्हें फांसी देने की बजाय फौजी दस्ते द्वारा गोली से उड़ाया जाए क्योंकि उन्हें इंग्लैंड के सम्राट के विरुद्ध जंग छेड़ने का दोषी ठहराया गया है, इस कारण वे जंगी कैदी हैं।

अंतत: सरकार ने उन्हें 24 मार्च सुबह की बजाय 23 मार्च 1931 को शाम 7 बजे ही फांसी पर लटकाने का फैसला कर लिया, जबकि इसका समाचार 24 मार्च की सुबह जारी किया जाना था। 23 मार्च को शहीदों के परिवारों को अधिकारियों के अड़ियल रवैये के कारण, अपने बिछुड़ रहे प्यारों से अंतिम बार मिलने का मौका भी न मिल सका।

वे नारे लगाते, देशभक्ति के गीत गाते और मौत के अन्यायपूर्ण फैसले सुनाने वाले शासन का मुंह चिढ़ाते हुए फांसी के तख्ते पर झूल गए।

गांव व डाकघर सकेतड़ी
जिला पंचकूला 134109
फोन: 0172-2556314
ई-मेल: mjswaraich29@gmail.com